10 जनवरी 2011
जिनवाणी 370

उपाध्याय का स्वरूप एवं महिमा

प्रो. चाँदमल कर्णावट

उपाध्याय आगमवेत्ता होते हैं तथा चरण एवं करण में भी निष्णात होते हैं। अध्यापन अथवा वाचनी देना उनका प्रमुख कार्य होता है। वे धर्मकथा, शास्त्रार्थ, निमित्तज्ञता, कवित्व आदि से धर्म की प्रभावना करते हैं। वे श्रुत के संरक्षक होते हैं। प्रस्तुत आलेख में उपाध्याय की महिमा पर भी प्रकाश डाला गया है। **-सम्पादक**

नवकार मंत्र या पंच परमेष्ठी मंत्र जैन धर्म का मूल मंत्र है। इस मंत्र में परम इष्ट परम पद स्थित अरिहंत, सिद्ध और परमपद की साधना में निरत आचार्य, उपाध्याय एवं साधु-साध्वीजी को नमस्कार किया गया है। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु-साध्वी ये पंच परमेष्ठी हैं। जैन धर्म गुणपूजक है, व्यक्ति पूजक नहीं। यही कारण है कि इस पंचपरमेष्ठी मंत्र या नवकार मंत्र में किसी अरिहंत, सिद्ध, आचार्यादि का नामोल्लेख नहीं करके तद्तद्पद के योग्य गुणी आत्माओं को ही नमन किया गया है। उपाध्याय पंच परमेष्ठी में चतुर्थ पद के अधिकारी श्रमण हैं जो उपाध्याय के गुणों से अलंकृत और शोभित होते हैं तथा साधना में निरत रहते हुए मोक्ष सिद्धि करते हैं।

उपाध्याय कौन?- जो श्रमण के सभी गुणों से युक्त होकर स्वयं संपूर्ण जिनागमों या जैन शास्त्रों के गूढ ज्ञाता होने के साथ अन्य साधु-साध्वी एवं गृहस्थों को पात्रापात्र के विचारपूर्वक यथा योग्य ज्ञान सिखाते एवं अध्ययन कराते हैं।

भगवती सूत्र (1.1.1.) में मंगलाचरण वृत्ति में कहा गया है-

बारसंगो जिणक्खाओ, सज्झाओ कहिओ बुहेहिं।
तं उवदिसंति जम्हा, उवज्झाया तेण वुच्चंति॥

अर्थात् जिन प्रतिपादित द्वादशांग रूप स्वाध्यायसूत्र वाङ्मय ज्ञानियों द्वारा कथित, वर्णित या ग्रथित किया गया है। जो उसका उपदेश करते हैं वे (उपदेश श्रमण) उपाध्याय कहे जाते हैं।[1]

"आगमों की अर्थवाचना आचार्य देते हैं। यहाँ उपाध्याय द्वारा स्वाध्यायोपदेश पर सूत्रवाचना का उल्लेख है। उसका तात्पर्य यह है कि सूत्रों के पाठोच्चारण की शुद्धता, स्पष्टता, विशुद्धता, अपरिवर्त्यता तथा स्थिरता बनाए रखने के हेतु उपाध्याय पारम्परिक एवं भाषावैज्ञानिक आदि दृष्टियों से अंतेवासी श्रमणों को मूलपाठ का सांगोपांग शिक्षण देते हैं।"[2]

आगम गाथाओं का उच्चारण कर देना मात्र पाठ या वाचन नहीं है। अनुयोगद्वार सूत्र 8 में पद के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शिक्षित, जिनस्थित आदि 16 विशेषण दिए गए हैं।[3] सूत्र पाठों को अक्षुण्ण एवं अपरिवर्त्य बनाए रखने के लिए उपाध्याय को सूत्र वाचना देने में कितना जागरुक एवं प्रयत्नशील रहना होता था, यह अनुयोगद्वार सूत्र कथित 16 विशेषणों से सुस्पष्ट है। आगम पाठों को यथावत् बनाए रखने के लिए जहाँ इतने उपाय प्रचलित थे, वहाँ आगमों का मूल स्वरूप क्यों नहीं अव्याहत एवं अपरिवर्तित रहता।

मूलपाठों को परम्परा रूप से शुद्ध स्पष्ट बनाए रखने हेतु अर्थ के साथ उनके मूल उच्चारण, भाषायी गुणों की सुरक्षा उपाध्याय का महनीय दायित्व कितना कठिन एवं महत्त्वपूर्ण है। क्या उपाध्याय की यह भूमिका मूलरूप में आज भी सुरक्षित है अब जिनागमों का ज्ञान गुरुशिष्य परम्परा से मौखिक नहीं रहा, अब तो जिनागम लिपिबद्ध ही नहीं मुद्रित भी हो चुके हैं?

उपाध्याय का स्वरूप- उपाध्याय के सामान्य स्वरूप का निरूपण किया जा चुका है। अब उपाध्याय पद के स्वरूप का विशेष वर्णन किया जा रहा है।

उपाध्याय 25 गुणों से युक्त होते हैं। वे 11 अंग 12 उपांग सूत्र तथा चरण सत्तरी एवं करण सत्तरी के धारक होने से उपाध्याय 25 गुणों के धारी होते हैं। अन्य प्रकार से 12 अंग (द्वादशांगी) के पाठक 13-14 चरणसत्तरी एवं करणसत्तरी के गुणों से युक्त 15-22 आठ प्रकार की प्रभावना से प्रभावक 23-25 तीनों योगों को वश में करने वाले। इन 25 गुणों के धारक बताए गए हैं। इनका उल्लेख भगवती सूत्र की पूर्वोक्त गाथा बारस्संगो जिणक्खाओ के अनुसार किया गया है।[4]

चरणसत्तरी- चरणसत्तरी में निहित 70 गुणों का उल्लेख निम्न प्रकार बताया गया है- चरणसत्तरी में चरण का अर्थ है चारित्र। नित्य क्रिया जिसका निरंतर पालन किया जाता है वे चरणगुण कहलाते हैं। उसके 70 भेद हैं- 5 महाव्रत, 10 प्रकार का खंति आदि यति धर्म, 17 प्रकार का संयम, 10 प्रकार का वैयावृत्त्य, 9 बाड़सहित ब्रह्मचर्य, 3 ज्ञानादि रत्नत्रय, 12 प्रकार का तप, 4 क्रोधादि चतुष्टय का निग्रह।[5]

करणसत्तरी- करण का अर्थ है नैमित्तिक क्रिया। जिस अवसर पर जो करणीय हो। चरण नित्यक्रिया को बताया गया है जब कि करण नैमित्तिक क्रिया है। करणसत्तरी के 70 भेद हैं- 4 पिण्डविशुद्धि (आहार, वस्त्र, पात्र और स्थान निर्दोष भोगना) अनित्यादि 12 भावना, पाँच समिति, 12 पडिमा, 5 इन्द्रियनिग्रह, 25 प्रतिलेखन, 3 गुप्ति एवं चार अभिग्रह (द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की अपेक्षा)[6]

12 भिक्षु प्रतिमाओं (पडिमाओं) का वर्णन दशाश्रुतस्कंध शास्त्र की सातवीं दशा में हुआ है। वहाँ देखा जा सकता है एवं 25 प्रतिलेखना का उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 26 में किया गया है। उपाध्याय महाराज प्रभावक होते हैं। वे 8 प्रभावना से जिन धर्म की प्रभावना करते हैं। आठ प्रभावना निम्न प्रकार हैं-

प्रवचनी- वे जैन एवं जैनेतर शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान होते हैं।

धर्मकथा- धर्मोपदेश करने में कुशल होते हैं।

वादी- उपाध्याय जी स्वपक्ष के मण्डन और परमत के खंडन में सिद्धहस्त होते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नैमित्तिक- भूत, भविष्य और वर्तमान में होने वाले हानि-लाभ के ज्ञाता होते हैं।

तपस्वी- विविध प्रकार के तप करने में कुशल होते हैं।

विद्यावान- रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि 14 विद्याओं में निष्णात होते हैं।

सिद्ध- अंजन आदि विविध प्रकार की सिद्धियों के ज्ञाता होते हैं।

कवि- गद्य-पद्य-कथ्य-गेय चार प्रकार के काव्यों की रचना करने वाले होते हैं।

उपाध्याय जी का यह प्रभावक स्वरूप जहाँ उनकी बहुआयामी विद्वत्ता का द्योतक है, वहीं वह जिनधर्म की प्रभावना का महान् कारण बनता है।

इसके अतिरिक्त उपाध्याय जी को बहुश्रुत की 17 उपमाओं से उपमित किया गया है। ये उपमाएँ हैं- शंख, आकीर्ण अश्व, अश्वारूढ़ योद्धा, कुंजर, वृषभ, सिंह, वासुदेव चक्रवर्ती, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, कोष्ठागार, जम्बूवृक्ष, सीतानदी, मन्दरगिरी एवं स्वयंभूरमण समुद्र। कुछ उपमाओं को स्पष्ट किया जा रहा है।

शंख- शंख में रखा हुआ दूध न तो विकृत होता है न खट्टा ही और न रिसता ही है। इसी प्रकार बहुश्रुत उपाध्याय में निहित धर्म, श्रुत और कीर्ति तीनों की किसी प्रकार विकृति नहीं होती और निर्मलता बनी रहती है।

आकीर्ण अश्व- कम्बोज देश में उत्पन्न अश्व शीलादि गुणों से युक्त जातिमान और वेग में श्रेष्ठ होते हैं। इसी प्रकार बहुश्रुत उपाध्याय मुनियों में श्रेष्ठ होते हैं।

अश्वारुढ़योद्धा- जैसे जातिमान अश्वारूढ योद्धा दोनों ओर होने वाले विजयवाद्यों के घोष से सुशोभित होते हैं वैसे ही उपाध्याय भी मुनिवृंद के स्वाध्याय घोष से सुशोभित होते हैं।

कुंजर- जैसे 60 वर्ष का उत्तरोत्तर वर्धमान बलवान हाथी प्रतिद्वन्द्वी हाथियों से पराजित नहीं होता इसी प्रकार दीर्घकालिक पर्याय में नाना विद्याओं एवं शास्त्रों के अनुभवरूप बल से औत्पात्तिकी आदि चारों बुद्धियों से परिवृत्त बहुश्रुत उपाध्याय किसी भी प्रतिवादी से पराजित नहीं होते।

विस्तारमय से सभी उपमाओं का वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है। शेष वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के अध्याय 11 में देखा जा सकता है।

उपाध्याय की महिमा

उपाध्याय पद की महिमा इसी से स्पष्ट है कि जहाँ श्रमण के सात पदों का वर्णन हुआ है वहाँ आचार्य के पश्चात् उपाध्याय पद को शीर्ष स्थान दिया गया है।[5] जहाँ आचार्य, उपाध्याय और गणावच्छेदक तीन पदों की चर्चा हुई है वहाँ भी आचार्य के बाद और गणावच्छदेक के पूर्व उपाध्याय पद को प्रतिष्ठित किया गया है।

संघ में एकाधिक संघाटक हों तथा जिनमें बालसंत हो, युवा हों, नवदीक्षित हों वहाँ आचार्य के साथ उपाध्याय का होना आवश्यक बताया गया है।[6] इससे आचार्य के साथ-साथ उपाध्याय पद की महिमा सुस्पष्ट होती है।

जैसे धर्मरूप शरीर की एक आँख आचार है तो दूसरी आँख विचार है अथवा विचार आँख है तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार पैर है। पक्षी के दो पर अथवा रथ के दो चक्कों की तरह ही जीवन के दो पक्ष हैं- आचार और विचार। शुद्ध आचार की शिक्षा देना आचार्य का कर्तव्य है तो विचार अर्थात् शास्त्रों के गंभीर ज्ञान का रहस्य बताना, भगवद्वाणी का ज्ञान कराना, वाचना देना, आत्मा और अनात्मा या चेतन और जड़ के भेद-विज्ञान की शिक्षा देना उपाध्याय का कार्य है।[7] आचार और विचार के अभिन्न संबंध की तरह आचार्य और उपाध्याय का भी संघ में अभिन्न संबंध है।

उपाध्याय को जिन नहीं, परन्तु जिन सरीखे, केवली नहीं परन्तु केवली सरीखे बताया गया है।[12] 'जिणसकासा' शब्द से यह कथन स्पष्ट होता है।

उपाध्याय महाराज सूत्रपाठी बताए गए हैं।[9] नव सूत्रों के पाठक अध्यापक रूप में उनका दायित्व अत्यन्त महिमामय है। सूत्र पाठों की शुद्धता एवं पारम्परिक भाषा के संरक्षक रूप में उनका योगदान रहता है।

विशेष- पंच परमेष्ठी में चतुर्थ पद के धारी उपाध्यायजी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका वर्ग को शास्त्रों का अध्ययन कराते हैं। अतः उनमें अध्यापन के कतिपय गुण होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में उनका अध्यापन-कला का ज्ञाता भी होना आवश्यक है।

1. प्राचीन उक्ति है- 'शिक्षा पुत्रान् वै अंतेवासिनः' अर्थात् शिक्षा पुत्रों को अथवा अंतेवासी शिष्यों को देनी चाहिए। अतः शिक्षक के रूप में उपाध्याय जी का व्यवहार शिष्यवर्ग के साथ मधुर-मृदु होना चाहिए। भय और कठोरता से शिष्यवर्ग में भय पैदा होता है और अध्ययन में वे रुचि नहीं लेते। अध्यापक के रूप में उपाध्याय जी को पाठ्यक्रम से अधिक शिक्षार्थी को महत्त्व देना चाहिए। क्योंकि पाठ्यक्रम शिक्षार्थी के लिए है, शिक्षार्थी पाठ्यक्रम के लिए नहीं है। आदर्श अध्यापक के रूप में उपाध्याय से यह अपेक्षित है।
2. प्रत्येक बार के शिक्षण में (वाचनी में) प्रारम्भ में पिछले दिन के पाठ पर प्रश्न करके आगे का पाठ (वाचनी) का अध्यापन किया जाना अपेक्षित है। इससे शिक्षार्थी साधु-साध्वी आदि पिछला पाठ तैयार करके आयेंगे। वाचनी के बीच-बीच में भी प्रश्न करते रहना आवश्यक है, जिससे शिक्षार्थी साधु-साध्वी एकाग्रता से वाचनी सुनेंगे, अन्यथा वे प्रमादग्रस्त हो सकते हैं। वाचनी के अन्त में पूरी वाचनी एक दिन के कुछ प्रश्न करना आवश्यक है जिससे पूरे पाठ की पुनरावृत्ति हो सके। इससे शिक्षार्थी मुनिवर्ग में जागरूकता रहेगी, वे वाचनी में पूर्ण रुचि लेंगे और नवीन ज्ञान ग्रहण करने में सफल होंगे।
3. जलता हुआ दीपक ही दूसरे दीपक को जला सकता है। तदनुसार उपाध्याय प्रवर भी अपना अध्ययन जारी रखें। नवीन टीकाओं, वृत्तियों, चूर्णियों का तथा अन्य उपयोगी शास्त्रों का, दर्शनों का अध्ययन करते रहें।
4. आचार-विचार में समन्वय होना आवश्यक है। बिना विचार के आचार की और बिना आचार के विचार की सार्थकता नहीं हो सकती। इसी प्रकार आचार के प्रतिपादक आचार्य और विचार या ज्ञान के प्रतिपादक उपाध्याय महाराज दोनों में समन्वय होना अति आवश्यक है। 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए ज्ञानदाता उपाध्याय और क्रिया या आचार के पालक एवं अन्यों से पालन कराने वाले

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य दोनों समन्वित रूप में मोक्ष की साधना के कारण बनते हैं। 'पढमं नाणं तओ दया' में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

चतुर्विधसंघ में तीर्थरूपी श्रावक-श्राविका के रूप में हम भी उपाध्याय से ज्ञान प्राप्तकर आचार्य से आचार ग्रहण कर ज्ञान एवं क्रिया दोनों की साधना करते हुए अपना अभीष्ट मोक्ष प्राप्त कर सकें, यही मंगल भावना।

संदर्भ सूची:-

1. जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग-2, -आचार्यश्री हस्तीमल जी म.सा., जैन इतिहास समिति, आचार्य विनयचंद्र ज्ञान भंडार, लाल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, प्रथम संस्करण 1974,सम्पादकीय पृ-66
2. वही, पृष्ठ 67
3. अनुयोगद्वार सूत्र 8, संकलित
4-6. जैन तत्त्व प्रकाश, आचार्य श्री अमोलकऋषि जी महाराज, अमोल जैन ज्ञानालय,धुले, 13वीं आवृत्ति 1998
7. चाँदमल कर्णावट द्वारा लिखित 'जैन विचारधारा में शिक्षा' लेख से संगृहीत, द्रष्टव्य पुस्तकः- 'जैन आचार : सिद्धान्त और स्वरूप' - उपाचार्य देवेन्द्र मुनि, तारक गुरु ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राज.)
8. आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा., उत्तराध्ययन सूत्र- द्वितीय भाग, अध्ययन 11, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर (राज.), प्रथम आवृत्ति-1985
9. आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा., जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग 2, पृ.52 संपादकीय
10. युवाचार्य श्री मधुकर जी म.सा., 'त्रीणि छेदसूत्राणि' के अतंर्गत व्यवहार सूत्र, आगम प्रकाशन समिति, ब्रज मधुकर स्मृति भवन पीपलिया बाजार, ब्यावर, द्वि. संस्करण 2006, तीसरा उद्देशक, पृ. 312
11. श्री मधुकर मुनि 'महामंत्र नवकार', मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राज.), पृ.8
12. आवश्यक सूत्र

-प्लॉट 35, अहिंसापुरी, फतेहपुरा, उदयपुर-313001(राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org